व्यवहारनयकर [सकलं] समस्त [लोकालोकं] लोक अलोक को [विमलं] संशय रहित [पश्यन्तः] प्रत्यक्ष देखते हुए [तिष्ठन्ति] ठहर रहे हैं।

भावार्थ :– मैं कर्मों के क्षय के निमित्त फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं और व्यवहारनयकर सब लोकालोक को निःसंदेहपने से प्रत्यक्ष देखते हैं, परंतु पदार्थों में तन्मयी नहीं हैं, अपने स्वरूप में तन्मयी हैं। जो परपदार्थों में तन्मयी हो, तो पर के सुख–दुःख से आप सुखी–दुःखी होवे, ऐसा उनमें कदाचित् नहीं है। व्यवहारनयकर स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर प्रत्यक्ष निःसंदेह जानते हैं, किसी पदार्थ से राग–द्वेष नहीं है। यदि राग के हेतु से किसी को जाने, तो वे राग द्वेषमयी होवें, यह बड़ा दूषण है, इसलिये यह निश्चय हुआ कि निश्चयनयकर अपने स्वरूप में निवास करते हैं पर में नहीं, और अपनी ज्ञायकशक्तिकर सबको प्रत्यक्ष देखते हैं जानते हैं। जो निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा, इसलिए वह अपना स्वरूप ही आराधने योग्य है, यह भावार्थ हुआ।।५।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १३, गुरुवार,
दिनांक-१०-०६-१९७६, गाथा-५-६, प्रवचन-५

परमात्मप्रकाश बनाया। उसमें सात गाथा में सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है। सात गाथा। पहली गाथा में भूतकाल के सिद्धों को नमस्कार किया। अनन्त सिद्ध। दूसरी गाथा में भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे, उन्हें नमस्कार किया। तीसरी गाथा में वर्तमान भगवान विराजते हैं, वे भी भाव से सिद्ध हैं न? उन्हें नमस्कार किया। चौथी में महामुनि होकर निर्वाण को प्राप्त हुए, समुच्चय महामुनि लिये, गणधर का आया है इसमें, चौथी में वह नमस्कार किया। पाँचवीं में उनका निवासस्थान कहाँ है, यह निर्णय करके नमस्कार करते हैं। छठी में उनकी पर्याय में गुण क्या है, उसका स्मरण करके नमस्कार करते हैं और सातवीं में आचार्य-उपाध्याय-साधु को नमस्कार करते हैं। इस प्रकार सात गाथाओं में नमस्कार (की विधि यह है)। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

फिर से। पहली गाथा में भूतकाल के अनन्त सिद्धों को याद करके और सिद्ध

कैसे पाये, उस स्थिति का वर्णन करके उन्हें नमस्कार किया। भविष्य में भी अनन्त श्रेणिक राजा आदि किसी विधि से मोक्षमार्ग से मोक्ष पायेंगे, उसे याद करके भविष्य के अनन्त सिद्धों को नमस्कार किया। वर्तमान में तीर्थंकरदेव कर्म ईंधन में अग्नि में कर्म जलाते हैं। चार घाति है न, उन्हें याद करके उन्हें नमस्कार किया। चौथी में महामुनि गणधर आदि। चौथा बोल ऐसा है। उन्हें नमस्कार (किया)। सिद्धपद पाये उन्हें नमस्कार किया। और यह पाँचवीं आयी। पाँचवीं गाथा में उनका निवासस्थान कहाँ है, यह निर्णय करके नमस्कार करते है। वे सिद्ध हैं कहाँ? समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा है।

आगे यद्यपि वे सिद्ध परमात्मा व्यवहारनयकर लोकालोक को देखते हुए मोक्ष में तिष्ठ रहे हैं,... लोकालोक को जानकर मोक्ष में रहे हैं। यह व्यवहार हुआ। आहाहा! **लोक के शिखर पर विराजते हैं तो भी शुद्ध निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही स्थित हैं,...** बाह्य क्षेत्र से व्यवहार से बात की। निश्चय से तो अपने स्वरूप में वहाँ विराजते हैं। उन सिद्धों को याद करके नमस्कार किया है। पाँचवीं गाथा।

मुमुक्षु : णमो सिद्धाणं का रहस्य है।

(५) ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे अप्पाणि वसंत।
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिं विमलु णियंत।।५।।

देखा! '**अप्पाणि वसंत**' वजन यहाँ है। आत्मा बसता है कहाँ, यह अपेक्षा लेकर वन्दन किया है। क्योंकि दूसरे अन्यमत में तो ऐसा कुछ है नहीं। परमात्मा कहाँ है और परमात्मपद पाये उनका कुछ स्थान होगा या नहीं? स्थान के लिये व्यवहार से लोक के ऊपर, निश्चय स्वयं में। आहाहा! समझ में आया?

अन्वयार्थ :- मैं फिर उन सिद्धों के समूह को वन्दता हूँ... आहाहा! बहुत ही मांगलिक। परमात्मप्रकाश का वर्णन करना है न। **जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में तिष्ठते हुए...** यह सिद्धान्त है। आहाहा! निश्चय से भगवान अपने स्वरूप में ही है वहाँ। लोकाग्र में है, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। आहाहा! वह तो व्यवहार है, ऐसा बताया सही। उनका स्थान व्यवहार से पर लोकाग्र में है और निश्चय में तो भगवान अपने आनन्दस्वरूप में उसका निवास है। लोक में शिखर पर निवास है, वह तो

व्यवहार से निमित्तपने का ज्ञान कराने के लिये बात की है। आहाहा!

निश्चयनयकर अपने स्वरूप में तिष्ठते हुए... 'आत्मनि वसन्तो' आहाहा! कोई कहते हैं न कि बैकुण्ठ में है और अमुक है और ढींकना है। हमारे साधु को तुम आहार-पानी दोगे तो बैकुण्ठ में तुमको आहार-पानी देंगे। वहाँ लड्डू मिलेंगे।

मुमुक्षु : मतार्थ को निषेधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... निषेध होता है। मतार्थ, आगमार्थ, नयार्थ, यह सब एक-एक गाथा में पहले कह गये हैं न? इस प्रकार से उतारा है। ओहोहो!

समस्त लोक-अलोक को संशयरहित प्रत्यक्ष देखते हुए... है? **समस्त लोक-अलोक को संशयरहित प्रत्यक्ष देखते हुए ठहर रहे हैं।** आहाहा! **मैं कर्मों के क्षय के निमित्त...** आचार्य स्वयं कहते हैं। **मैं कर्मों के क्षय के निमित्त फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ... कर्मों के क्षय के निमित्त...** मेरा लक्ष्य स्वभाव के ऊपर है, उसमें नमस्कार करने में भले विकल्प है परन्तु मेरा लक्ष्य स्वभाव के ऊपर जोर है। उसके कारण कर्म का क्षय होता है।

अमृतचन्द्राचार्य ने कहा न? कि इस टीका से ही मेरी शुद्धि बढ़ो, अशुद्धि टलो। कहा न? मम विशुद्धि। टीका एव, ऐसा शब्द है। उसका अर्थ है कि टीका के काल में मेरा लक्ष्य जो द्रव्य के ऊपर के जोर में है, उस काल में शुद्धि बढ़ो। आहाहा! समझ में आया? वरना टीका करने का तो विकल्प है। टीका से मेरी विशुद्धि होओ और अशुद्धि टलो, पाठ तो ऐसा है। टीका के काल में मेरा घोलन अखण्ड आनन्द के प्रति, प्रभु के प्रति... (स्वयं प्रभु) उसके प्रति मेरा घोलन बढ़ेगा, उसमें अशुद्धि टलेगी और शुद्धि बढ़ेगी। समझ में आया? ज्ञाता में आया है न? 'तद्गुण लब्धये'।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गस्य नेतारं भेतारं कर्म भूभृताम,
ज्ञातारं विश्व तत्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये। (तत्त्वार्थसूत्र, मंगलाचरण)

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे गुण की प्राप्ति के लिये तुमको वन्दन करता हूँ। उनके गुण की प्राप्ति वन्दन के विकल्प से होती है? समझ में आया?

मुमुक्षु : गाथा तो ऐसा कहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या अपेक्षा है, यह जानना चाहिए न! उसका हृदय क्या है? आहाहा! उसका विवाद है। यह विवाद (करते हैं), देखो! भगवान को वन्दन करने से भी उनके गुण की प्राप्ति होती है। विकल्प से भी (होती है)। इसका अर्थ किया। ऐसा नहीं है, भाई! यह तो व्यवहार के शब्द हैं। परन्तु मैं वन्दन करता हूँ और उनके जो गुण मेरा चैतन्य है, उसके गुण पर मेरा जोर अन्दर से है। इसलिए वन्दना के काल में मेरा स्वभाव सन्मुख का जोर है, उससे मुझे गुण की प्राप्ति होगी। आहाहा! ऐसा है सब। शब्दार्थ बदल डाले।

मुमुक्षु : आप तो सब शब्द का अर्थ बदल देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बदल देते हैं, कहते हैं।

मुमुक्षु : आप तो बदले हुए को बदलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ शब्द यह है, इसलिए यहाँ तो निकालना पड़ा। संस्कृत पाठ है, हों! है न? आहाहा!

'**कर्मक्षयनिमित्तम्**' संस्कृत में है। चौथी लाईन '**सिद्धगणान् सिद्धसमूहान् वन्दे कर्मक्षयनिमित्तम्।**' चौथी लाईन है। इसका अर्थ जानना चाहिए न! एक ओर परमात्मा ऐसा कहे कि परद्रव्य के आश्रय से तो राग ही होता है। तथा एक ओर (कहे), परद्रव्य के आश्रय से कर्म का क्षय होता है। यह न्याय क्या है, वह समझना चाहिए न, बापू! किस शैली की यह व्याख्या है। देखो! इसमें कर्म का क्षय होता है। भगवान के चरणवन्दन से, स्तुति करने से। धवल में भी ऐसा आता है। शास्त्र की स्वाध्याय करने से असंख्य कर्म की निर्जरा होती है। शास्त्र की, हों! पाठ ऐसा है। क्या शैली है, यह जानना चाहिए न! एक ओर कहे, शास्त्र का स्वाध्याय है, बाहर का ज्ञान है, वह विकल्प है। कलशटीका में। कलशटीका में है। आहाहा! भाई!

मुमुक्षु : कलशटीका तो गृहस्थ की है, वह आचार्य का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जो हो। विकल्प है, वह बन्ध का कारण है और उसमें भी अनुभूति कही है, ऐसा लिखा है। कलश है न? कलश में। बारह अंग में, बारह अंग का ज्ञान है, वह विकल्प है। परन्तु उसमें भी भगवान आत्मा का अनुभव करना, ऐसा कहा है। कलशटीका में है। समझ में आया?

कलश १३। **ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसंग में और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है,...** आहाहा! कर्म का क्षय शुद्धात्मानुभूति से होता है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आत्मा, उसका अनुभव, उसे अनुसरकर द्रव्य के आश्रय से निर्मल वीतरागीदशा हो, वह मोक्षमार्ग और वह कर्मक्षय का कारण है। है? कलश है। १३, नीचे। एकदम नीचे। है न? दूसरी लाईन नीचे। **ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है।** इसकी नीचे एकदम पहला। **इस प्रसंग में और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है।** आहाहा! **उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग चैतन्य को चैतन्य का सम्बन्ध...

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी! जानना चाहिए न क्या अपेक्षा है, भाई! भगवान की वाणी पूर्वापर अविरोध होती है। पूर्वापर अविरोध होती है, विरोध नहीं होता। पूर्वापर विरोध हो, वह वीतराग की वाणी ही नहीं होती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **मैं कर्मों के क्षय के निमित्त फिर...** चार गाथा में तो नमस्कार किया। भूतकाल के, भविष्य के, वर्तमान के और मुनि मोक्ष पधारे उन्हें। **फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,...** यहाँ वजन है। इस गाथा में यहाँ बसन्तं है। बसन्तं है न वापस पाठ? आत्मा... आहाहा! भगवान वहाँ आत्मा में बसते हैं। आहाहा! अपनी शुद्ध आनन्द की परिणति और चतुष्टय आदि अनन्त गुण की दशा में वे बसते हैं। ऐसे बसन्तं करके याद करके नमस्कार किया है। कर्म के क्षय का अर्थ मेरे स्वभाव सन्मुख मेरा जोर है। इसलिए वे भगवान यहाँ बसते हैं, ऐसा याद करके मुझे क्षय होगा, यह स्वभाव के आश्रय से होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....बात करते हो।...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग वाणी, बापू! सर्वज्ञ का मार्ग बहुत गहन गूढ। यह तो

गूढ बात है। गूढवाद अर्थात् जिस पर्याय में पूरा द्रव्य आता नहीं—ऐसा जो द्रव्य, वह गूढवाद है, रहस्यवाद है, स्वभाववाद है। समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर से फरमाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय में द्रव्यस्वभाव आता नहीं और पर्याय के लक्ष्य से उसका लक्ष्य नहीं होता। आहाहा! ऐसा जो भगवान एक समय में द्रव्यस्वभाव, गूढस्वभाव, गूढ है, रहस्य है। आहाहा! वह द्रव्यस्वभाव का रहस्य है। वह परमात्मा का रहस्यवाद है। गूढवाद है, स्वभाववाद है। एक समय में भगवान पूर्ण शुद्ध अनन्त आनन्दकन्द है। वह पर्याय के पीछे है, इसलिए गूढ है। आहाहा! समझ में आया? अन्यमति में गूढवाद चलता है। कहते हैं, परन्तु वह गूढ यह है। आहाहा! जिसकी लीनता एक समय की पर्याय में अनादि से रमती है, उसे गूढ रहस्य समझना कठिन पड़ता है। जो पर्याय में नहीं और वस्तु में है... आहाहा! उसकी दृष्टि में वह गूढवाद, रहस्यवाद आना चाहिए। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि मैंने सिद्ध को वन्दन तो किया चार गाथाओं में। परन्तु पाँचवीं में वे प्रभु कहाँ बसते हैं, उन्हें याद करके मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? कोई व्यक्ति ऐसा तो विचार करे न कि यह शुद्ध चैतन्य आत्मा है, उसका जिसे साधकपना प्रगट हुआ, शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई, ऐसे साधकजीव को सिद्ध होने में तो असंख्य समय चाहिए। क्या कहा, समझ में आया? अनन्त समय नहीं चाहिए। आहाहा! भले पन्द्रह भव करे। परन्तु है असंख्य समय। कोई अन्तर्मुहूर्त में समकित पाकर वहीं का वहीं केवल (ज्ञान) पावे तो भी केवलज्ञान प्राप्त करने में असंख्य समय है। अर्थात्? कि यह वस्तु है, उसके साधक स्वभाव में जो चढ़ा, उसे सिद्ध होने में तो असंख्य समय ही लगेंगे। समझ में आया? तो फिर अनन्त काल में साधक हुए, वे असंख्य समय हो गये और अनन्त काल गया, अनन्त सिद्ध हुए। समझ में आया? उनका क्षेत्र कुछ चाहिए या नहीं?

वस्तु है, उसे जिसने अन्दर ज्ञान-दर्शन-चारित्र द्वारा साधी है और साधकर साध्य तो वह असंख्य समय में प्रगट होता है। और गया अनन्त काल। तब असंख्य समय प्रगट

हुआ, ऐसे सिद्ध रहे कहाँ हैं ? समझ में आया ? क्योंकि ऐसे अनन्त हुए। अन्तर साधक होकर असंख्य समय में सिद्ध होते हैं और अनन्त काल गया तो अनन्त सिद्ध हुए। समझ में आया ? अनन्त काल। आहाहा! वह अनन्त है, वे किस क्षेत्र में हैं ? व्यवहारक्षेत्र क्या ? निश्चयक्षेत्र क्या ? आहाहा!

मुमुक्षु : यह स्पष्टीकरण किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी! इसके भाव के पश्चात् छठी गाथा में लेंगे। गुण और पर्याय छठवीं में लेंगे। और सातवीं गाथा में लेंगे आचार्य-उपाध्याय-साधु। ऐसा करके सात गाथा तक नमस्कार (किया है)। आहाहा! देखो! यह मांगलिक किया है।

कहते हैं कि **उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,...** क्षेत्र बतलाना है न ? ऐसे सिद्ध हुए तो कहाँ हैं अब ? व्यवहार से लोकाग्र में है; निश्चय से अपने स्वरूप में है। आहाहा! समझ में आया ? णमो सिद्धाणं... णमो सिद्धाणं (बोले) परन्तु णमो सिद्धाणं, वे सिद्ध हुए किस प्रकार ? और सिद्ध हुए तो है क्या उनका भाव ? और हुए तो उनका क्षेत्र कौन सा है ? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो कमाल कर दिया है! आहाहा! लोगों को तो ऐसा है कि अरिहन्त हैं। जब ऐसा कहो कि स्वरूप साधन करके जीव है कहाँ ? तो एक तो यह कहे कि शरीरसहित है, वह भी कहाँ ? और शरीररहित है, वह भी कहाँ ? समझ में आया ? पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर भी वाणी निकलती है तो शरीरसहित है। उनकी वाणी है न ? वह शरीरसहित है तो वे कहाँ ? और शरीररहित हो गये, वे कहाँ ? समझ में आया ? आहाहा! देखो न, परमात्मप्रकाश! आहाहा! यह जहाँ वृक्ष उगाये, फिर उसे चबूतरा बनाये न पहले ? ओटलो समझते हो ? क्या कहते हैं ? वह वृक्ष में नीचे है न ? अपने ओटला कहते हैं न। उसे क्या कहते होंगे ?

मुमुक्षु : चबूतरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चबूतरा-चबूतरा। यह चबूतरा बनाया। आहाहा! परमात्मप्रकाश कहने से पहले उसके मूल सिद्ध को स्थापित किये। एक-एक काल के। उसके भूत के, भविष्य के, वर्तमान के, मुनि हुए उन्हें, और किस क्षेत्र में रहे उन्हें। आहाहा!

मुमुक्षु : क्षेत्र बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्र बताते हैं। आहा! यह कहीं अध्धर की बात नहीं, ऐसा बताते हैं। वस्तु की ऐसी स्थिति है। आहाहा! एक तो कर्म और क्षय निमित्त का अर्थ किया।

फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,... ओहो! असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण की शक्ति और उनकी परिणति अनन्त गुण की अपने में है। आहाहा! वहाँ यह उतारा है न कि पर्याय का क्षेत्र भिन्न है, द्रव्य का क्षेत्र भिन्न है। क्या कहा यह? संवर अधिकार में कहा है। विकार वस्तु का है, उसका क्षेत्र अलग है। विकार... विकार। जितने क्षेत्र में उत्पन्न होता है न? उतना क्षेत्र अलग है। ध्रुव क्षेत्र अलग। उसकी निर्मल पर्याय भी जितने क्षेत्र में से उत्पन्न होती है, उतना क्षेत्र पर्याय का अलग है और द्रव्य का अलग है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्य और पर्याय बाह्य क्षेत्र में कहाँ है, अन्दर में कहाँ है, यह बात करते हैं। आहाहा!

निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,... आहाहा! स्वरूप में स्थित है, यह तो ठीक, परन्तु अब व्यवहारक्षेत्र कौन सा? यहाँ सिद्ध हुए, वे वहीं के वहीं रहे हैं? सिद्ध तो यहाँ हुए हैं न? वहाँ सिद्ध नहीं हुए, सिद्ध तो यहाँ हुए हैं। आठों कर्मों का अभाव होकर सिद्ध तो यहाँ हुए हैं। स्वरूप में स्थित है वह तो ठीक। परन्तु अब क्षेत्र यहीं का यहीं है या दूसरा क्षेत्र है उन्हें? समझ में आया? आहाहा! **निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं, और व्यवहारनयकर...** है न व्यवहार? दूसरा क्षेत्र है न? आहाहा!

सब लोकालोक को निःसन्देहपने से प्रत्यक्ष देखते हैं,... यह बात ली अब। भले वे क्षेत्र अग्र में हैं (लोकाग्र में हैं)। परन्तु इतने क्षेत्र को नहीं, लोकालोकक्षेत्र को जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा का ऐसा रच दे, ऐसा नहीं। उसे अन्दर भाव में उसका माहात्म्य आना चाहिए। आहाहा! टोडरमलजी ने भावभासन कहा है। भाव का भासन अर्थात्? भाव ऐसा है, ऐसा उसका ज्ञान आना चाहिए। ऐसी की ऐसी बातें धार ले, यह तो अनन्त बार किया है। आहाहा!

व्यवहारनयकर सब लोकालोक को निःसन्देहपने से प्रत्यक्ष देखते हैं, परन्तु पदार्थों में तन्मयी नहीं हैं... पर को जानते हैं परन्तु पर से तन्मय नहीं। तन्मय तो अपनी पर्याय में है। तन्मय—उसरूप। लोकालोक को जानते हुए उसरूप नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? **परन्तु पदार्थों में तन्मयी नहीं हैं, अपने स्वरूप में तन्मयी हैं।** यह सिद्ध करना है। आहाहा! लोकालोक को जानने पर भी, वे लोकालोक के साथ तन्मय नहीं है। तन्मय—उसरूप तो अपनी पर्याय में एकरूप है। आहाहा!

जो परपदार्थों में तन्मयी हो, तो पर के सुख-दुःख से आप सुखी-दुःखी होवे,... शिखर के क्षेत्र करते यह बात अधिक वर्णन की है। समझ में आया? ऊपर क्षेत्र की अपेक्षा यह अधिक वर्णन किया है। स्वयं रहे हैं, अपने भावस्वरूप में, यह तो बराबर है, परन्तु अब लोकालोक को जानते हैं न, वह व्यवहार से? तो व्यवहार से जानते हैं तो उस जानने की वस्तु के साथ तन्मय होकर जानते हैं? या अपने में रहकर जानते हैं? आहाहा! **जो परपदार्थों में तन्मयी हो, तो पर के सुख-दुःख से आप सुखी-दुःखी होवे,...** नारकी के दुःख को जानते हैं तो उसे वे तन्मय होकर (जाने तो) स्वयं को दुःख हो। ऐसा तो है नहीं। आहाहा! **ऐसा उनमें कदाचित् नहीं है। व्यवहारनयकर स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर प्रत्यक्ष निःसन्देह जानते हैं,...** व्यवहारनय से **स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर...** अर्थात् क्या कहते हैं? कि भाई! स्थूल चीज़ है, वह केवलज्ञान में ज्ञात होती है या नहीं? और सूक्ष्म है, वह ज्ञात होती है या नहीं? कि स्थूल-सूक्ष्म सबको जानते हैं।

प्रत्यक्ष निःसन्देह जानते हैं, किसी पदार्थ से राग-द्वेष नहीं है। एक दूसरी बात ली है अब। पर के साथ तन्मय नहीं, पर को जानने से राग-द्वेष नहीं। समझ में आया? **यदि राग के हेतु से किसी को जाने, तो वे राग-द्वेषमयी होवें, यह बड़ा दूषण है,...** राग के हेतु से दूसरे को जाने, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो अपने ज्ञान के आनन्द के स्वभाव से जानते हैं। आहाहा! **इसलिए यह निश्चय हुआ कि निश्चयनयकर अपने स्वरूप में निवास करते हैं, पर में नहीं,....** पर को जानने पर भी पर में निवास नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयनयकर अपने स्वरूप में निवास करते हैं, पर में नहीं, और अपनी

ज्ञायकशक्तिकर... ज्ञायकशक्ति अपने सामर्थ्य से। वह तो जानने के शक्ति के सामर्थ्य से **सबको प्रत्यक्ष देखते हैं...** पर है, इसलिए पर को देखते हैं, ऐसा नहीं है। **अपनी ज्ञायकशक्तिकर सबको प्रत्यक्ष देखते हैं...** आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! प्रगट पर्याय। **अपनी ज्ञायकशक्तिकर...** भाई! यह तो परमात्मप्रकाश है। इसलिए इसे समझने के लिये जरा धीर होना चाहिए। धीर... धीर। आहाहा! **सबको प्रत्यक्ष देखते हैं, जानते हैं।**

जो निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा,... देखा! है न? वास्तव में अपने स्वरूप में निवास। पर को जानने पर भी, पर में निवास नहीं; पर को जानने पर भी, राग-द्वेष नहीं। ऐसा स्वरूप है, ऐसा सिद्ध करके नमस्कार करते हैं। आहाहा! ऐसा का ऐसा सिद्ध को नमस्कार (किया) ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! **इसलिए वह अपना स्वरूप ही आराधने योग्य है,...** लो! लोकालोक को जाने, इसलिए परस्वरूप आराधनेयोग्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अपना जो शुद्धात्मस्वभाव, वह आराधनेयोग्य है। आहाहा! जो अपने में बसा हुआ है। भगवान अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि स्वभावरूप से बसा हुआ तत्त्व है। उसका आराधन करने से मुक्ति होती है। वह आराधनेयोग्य है। पर को जाने, इसलिए पर आराधनेयोग्य है, यह नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञायकशक्ति पर को जानती है। समझ में आया? परन्तु वह ज्ञायकशक्ति प्रगट कैसे हुई? अपना शुद्धात्मस्वभाव, जिसमें अनन्त गुण बसे हैं, अनन्त शान्ति, आनन्द बसे हैं। आहाहा! वह गूढ स्वभाव है, गम्भीर स्वभाव है। जिसका स्वरूप ही शक्तिमय स्वभावमय है, उसका आराधन करना। आहाहा! जिसमें बसे हुए हैं, उसका आराधन करना। आहाहा! लोकालोक यहाँ नहीं, देव-गुरु यहाँ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञायकशक्ति वळे, तब ज्ञायकशक्ति को पर्याय गिनना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय। पर्याय है न यहाँ। **ज्ञायकशक्तिकर सबको प्रत्यक्ष देखते हैं,...** यह तो वर्तमान पर्याय की बात है। आहाहा!

जो निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा,... इस गाथा का सार यह। अन्तिम भावार्थ कहते हैं न प्रत्येक में? कि इसमें क्या निकालना तब? **अपने स्वरूप में निवास**

कहा, इसलिए वह अपना स्वरूप ही आराधने योग्य है, यह भावार्थ हुआ। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश की मांगलिक की विधि अलग प्रकार की है। समयसार में तो कहा है, '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' वहाँ तो प्रतिघात के स्थान पर कहकर सिद्ध को पर्याय में स्थापित किया। श्रोता की पर्याय में (स्थापित किया), अपनी पर्याय में स्थापित किया। अब पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित किया तो उसका लक्ष्य द्रव्य पर जायेगा। ऐसे द्रव्य के लक्ष्य से अब सुन, ऐसा कहते हैं। **समयसार कहूँगा।** आहाहा! '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' फिर तो सिद्ध की स्थिति का वर्णन किया है। जैसे यहाँ सिद्ध का वर्णन किया है ऐसे। वहाँ '**ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते वोच्छामि...**' समयप्राभृत कहूँगा। '**समयपाहुडमिणमो सुदकेलीभणिदं।**' श्रुतकेवली और केवलियों से कही हुई बात को कहूँगा। आहाहा! चौथा पद श्रुतकेवली अर्थात् अकेले श्रुतकेवली नहीं, ऐसा। हों! कितने ही उसमें यह निकालते हैं कि यह तो श्रुतकेवली इतना शब्द है। परन्तु टीका में श्रुतकेवली और केवली दो अर्थ निकाले हैं। समझ में आया? और इसका अर्थ वापस नियमसार में किया है। नियमसार की पहली गाथा है न? है नियमसार? पहली गाथा।

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं॥१॥

दोनों अलग किये। '**केवलिसुदकेवलीभणिदं**' अर्थात् वहाँ दो निकाले। '**सुदकेवलीभणिदं**' है न चौथा पद वहाँ? '**सुदकेवलीभणिदं**' यहाँ '**केवली**' और '**सुदकेवलीभणिदं**' इसी और इसी का अर्थ निकाला, अर्थात् श्रुतकेवली के दो (अर्थ) निकाले। केवली और श्रुतकेवली। उनकी कही हुई बात मैं कहूँगा। आहाहा! स्वयं सब कहने को समर्थ है, परन्तु निर्मान है। भगवान केवली परमात्मा और श्रुतकेवलियों ने कहा है, वह मैं कहूँगा। आहाहा! यह पाँच गाथायें हुई।

छठवीं में अब उनके गुण को स्मरण करते हैं। यह क्षेत्र का निवास अपने में है... अब उनकी पर्याय है न? ... गुण अर्थात् पर्याय। उनकी—भगवान की-सिद्ध की पर्याय कैसी है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो मोक्ष का मण्डप रोपने को खड़े हुए हैं। परमात्मप्रकाश—परमात्मा होने का... आहाहा! ... मुद्दत है परमात्मा होने की, परन्तु परमात्मा होने का... आहाहा!

गाथा - ६

अथ निष्कलात्मानं सिद्धपरमेष्ठिनं नत्वेदानीं तस्य सिद्धस्वरूपस्य तत्प्राप्त्युपायस्य च प्रतिपादकं सकलात्मानं नमस्करोमि –

६) केवल–दंसण–णाणमय केवल–सुक्ख–सहाय।
जिणवर वंदउँ भत्तियए जेहिं पयासिय भाव।।६।।

केवलदर्शनज्ञानमयान् केवलसुखस्वभावान्।
जिनवरान् वन्दे भक्त्या यैः प्रकाशिता भावाः।।६।।

केवलदर्शनज्ञानमयाः केवलसुखस्वभावा ये तान् जिनवरानहं वन्दे। कया। भक्त्या। यैः किं कृतम्। प्रकाशिता भावा जीवाजीवादिपदार्था इत। इतो विशेषः। केवलज्ञानाद्यनन्त–चतुष्टयस्वरूपपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपाभेदरत्नत्रयात्मकं सुखदुःखजीवितमरण–लाभालाभशत्रुमित्रसमानभावनाविनाभूतवीतरागनिर्विकल्पसमाधिपूर्वं जिनोपदेशं लब्ध्वा पश्चादनन्तचतुष्टयस्वरूपा जाता ये। पुनश्च किं कृतम्। यैः अनुवादरूपेण जीवादिपदार्थाः प्रकाशिताः। विशेषेण तु कर्माभावे सति केवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वरूपलाभात्मको मोक्षः, शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मको मोक्षमार्गश्च, तानहं वन्दे। अत्रार्हद्गुण–स्वरूपस्वशुद्धात्मस्वरूपमेवोपादेयमिति भावार्थ :।।६।।

आगे निरंजन, निराकार, निःशरीर सिद्धपरमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ –

जो ज्ञान दर्शनमयी केवल सुखस्वभावी जिनवरा।
सब भाव के हैं प्रकाशक है भक्ति से वन्दन सदा।।६।।

अन्वयार्थ :– [केवलदर्शनज्ञानमयाः] जो केवलदर्शन और केवलज्ञानमयी हैं, [केवलसुखस्वभावाः] तथा जिनका केवलसुख ही स्वभाव है और [यैः] जिन्होंने [भावाः] जीवादिक सकल पदार्थ [प्रकाशिताः] प्रकाशित किये, उनको मैं भक्त्या भक्ति से [वन्दे] नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ :– केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है, उसके यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान और अनुभव, इन स्वरूप अभेदरत्नत्रय वह जिनका स्वभाव है, और सुख–दुःख, जीवित–मरण, लाभ–अलाभ, शत्रु–मित्र, सबमें समान भाव होने से उत्पन्न

हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को पाकर अनंत चतुष्टयरूप हुए, तथा जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया तथा जो कर्म का अभाव है वह वही केवलज्ञानादि अनंत गुणरूप मोक्ष और जो शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय वही हुआ मोक्षमार्ग ऐसे मोक्ष और मोक्षमार्ग को भी प्रगट किया, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। इस व्याख्यान में अरहंतदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वही आराधने योग्य है, यह भावार्थ जानना।।६।।

गाथा - ६ पर प्रवचन

आगे निरंजन, निराकार, निःशरीर सिद्धपरमेष्ठी को... अर्थात् पर्याय में सिद्ध कैसे हैं ? निरंजन हैं, निराकार है, निःशरीर है। सिद्ध परमेष्ठी, उन्हें **नमस्कार करता हूँ।** अन्तिम लेंगे। **इस व्याख्यान में अरहन्तदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वही आराधनेयोग्य है,...** अन्तिम शब्द है। बहुत टीका.... छठवीं (गाथा)

६) केवल-दंसण-णाणमय केवल-सुक्ख-सहाय।
जिणवर वंदउँ भत्तियए जेहिं पयासिय भाव।।६।।

अन्वयार्थ :- जो केवलदर्शन और केवलज्ञानमयी हैं,... देखा! केवलज्ञान, केवलदर्शनवाले नहीं। मयी—केवलज्ञान, केवलदर्शनमयी है। आहाहा! दिगम्बर सन्त वे तो केवली के पथानुगामी! केवली को खड़ा रखा है! **केवलदर्शन और केवलज्ञानमयी हैं, तथा जिनका केवलसुख ही स्वभाव है...** 'मयी' कहकर फिर यहाँ केवलसुखमयी न कहकर केवलसुखस्वभाव (कहा)। **जिनका केवलसुख ही स्वभाव है...** आहाहा! अकेला आनन्द जिसका स्वभाव है। सिद्ध भगवान का... आहाहा! यह गुणों का वर्णन है। वह निवास का था। आहाहा! अपने एक क्षेत्र में रहे हैं, परन्तु उनकी गुण की दशा कैसी है ? कि केवलदर्शन, केवलज्ञानमयी भगवान है।

जिनका केवलसुख ही स्वभाव है... अकेला आनन्दस्वभाव है। आहाहा! सिद्ध

भगवान की पर्याय में अकेला आनन्दस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? उसमें केवलदर्शन और ज्ञानमयी कहकर, यह उनका आनन्दस्वभाव है, (ऐसा कहते हैं)। अतीन्द्रिय आनन्द की स्वभावदशा में रमते हैं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि यह लोकालोक को जानते हैं, इसलिए सुखी—ऐसा नहीं। वे स्वयं ही केवलसुखमयी है। सुख ही जिनका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

केवलसुख ही स्वभाव है और जिन्होंने जीवादिक सकल पदार्थ प्रकाशित किये, उनको मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ। अरिहन्त के केवलज्ञान का वर्णन करके सिद्ध का वर्णन ऐसा करते हैं। अरिहन्त का वर्णन है। कहा है, ऐसा कहा न! आहाहा! तीन में सिद्धों को नमस्कार (किया)। भूत, भविष्य, वर्तमान। चौथे में मुनि मोक्ष में पधारे, महा गणधर आदि। पाँचवें में निवासस्थान की अस्ति, छठवें में अरिहन्त के गुणों का वर्णन करके अरिहन्त को नमस्कार करते हैं। इसलिए सिद्ध का आया, मुनि का आया। अरिहन्त आये न! अब तीन पद रहे, वह सातवीं गाथा में डालेंगे। आचार्य, उपाध्याय, साधु। आहाहा! पहले सिद्ध को लिया, फिर अरिहन्त को लिया और फिर (आचार्य)। समझ में आया? यह तो भगवान की कथा है, भाई! यह कहीं वार्ता नहीं। आहाहा! भगवान के दरबार में कैसे प्रविष्ट होना, उसकी यह बात है।

क्या कहा? **जीवादिक सकल पदार्थ प्रकाशित किये,...** अरिहन्त लिये। सिद्ध को कहाँ प्रकाशना है? सिद्ध की व्याख्या हुई। अब यहाँ अरिहन्त लिये। आहाहा! जिसने जीवादि सकल पदार्थ तीन काल के—लोक के जिसने प्रकाशित किये—अरिहन्त परमात्मा... आहाहा! उन्हें मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ। ओहो! **भक्ति से नमस्कार करता हूँ।** बेगार से नहीं, उन्हें बहुमान से नमस्कार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है,... केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टयस्वरूप वर्तमान प्रगट, **जो परमात्मतत्त्व है, उसके यथार्थ...** यह त्रिकाल की बात की। **केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है, त्रिकाल, उसके यथार्थ श्रद्धान...** उसकी यथार्थ श्रद्धा। आहाहा!

मुमुक्षु : पहली त्रिकाल ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। प्रगट होगी उससे। परन्तु यह किसका? केवलज्ञान आदि

अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप जो स्वभाव, ऐसा परमात्मतत्त्व द्रव्य **उसके यथार्थश्रद्धान,...** ऐसा है न? आहाहा!

मुमुक्षु : परमात्मतत्त्व कैसा है? कि केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शक्तिरूप से, ऐसा यहाँ अभी पहले यह लेना। फिर प्रगट कैसे होते हैं, यह लेना है। अरिहन्त को केवलज्ञानादि कैसे प्रगट हुए? यह बात लेते हैं। उपाय भी बताते हैं। यह कहते हैं।

केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है, त्रिकाल, उसके यथार्थ श्रद्धान... आहाहा! अनन्त चतुष्टयस्वरूप परमात्मा है, उसका विश्वास आना अन्दर। आहाहा! ऐसा जो श्रद्धान। पूर्ण परमात्मतत्त्व की पाचनशक्ति श्रद्धान में है। समझ में आया? उस परमात्मतत्त्व का ज्ञान। अनन्त केवलज्ञान चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मा त्रिकाली है, उसका ज्ञान। आहाहा! और परमात्मतत्त्व का **अनुभव...** वह आचरण। अनुभव का आचरण, चारित्र। परमात्मतत्त्व का आचरण, पूर्णानन्द के नाथ का आचरण, उसका अनुभव। 'अनुभव लक्ष्य प्रतीत....' श्रीमद् में आता है न? लक्ष्य, वह ज्ञान; प्रतीति, वह श्रद्धा; अनुभव वह चारित्र, वहाँ ऐसे तीन लिये हैं। आत्मसिद्धि में आता है। 'अनुभव लक्ष्य प्रतीत।' लक्ष्य वह ज्ञान; प्रतीति, वह श्रद्धा; अनुभव वह चारित्र। वहाँ... अनुभव चारित्र। वह चारित्र अर्थात् आनन्दस्वरूप भगवान में रमना, उसका नाम चारित्र। यह पंच महाव्रत और नग्नपना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! अब मोक्षमार्ग भी साथ में बताते हैं।

इन स्वरूप अभेदरत्नत्रय वह जिनका स्वभाव है,... देखा! आहाहा! ऐसा अभेदरत्नत्रय जिनका स्वभाव है। यह पहला, इसका बाद में। **और सुख-दुःख, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र सबमें समान भाव होने से उत्पन्न हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को पाकर...** ऐसे कहनेवाले के उपदेश को पाकर **अनन्त चतुष्टयरूप हुए,...** ऐसा कहते हैं।

फिर से। जो यह परमात्मतत्त्व त्रिकाल है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और उसका अनुभव, उस **स्वरूप अभेदरत्नत्रय वह जिनका स्वभाव है,...** जिसका स्वभाव है। **और**

सुख-दुःख,... संयोग अनुकूल-प्रतिकूल **जीवित-मरण,...** प्राण रहे या न रहे। **लाभ-अलाभ,...** अनुकूल-प्रतिकूल **शत्रु-मित्र सबमें समान भाव...** आहाहा! **सबमें समान भाव होने से उत्पन्न हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि...** लो! **सबमें समान भाव होने से उत्पन्न हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को...** आहाहा! ऐसा कहनेवाले जिनराज के उपदेश को प्राप्त करके **अनन्त चतुष्टयरूप हुए,...** ऐसे जिनराज का उपदेश जिसे मिला और अनन्त चतुष्टय हुए। आहाहा! ऐसी वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि। लोगस्स में आता है, 'समाहिवरमुत्तंदिंतु' परन्तु उस समाधि का अर्थ समझे नहीं। वह यह। वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि। आहाहा!

उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को... भगवान ने ऐसा कहा। **पाकर अनन्त चतुष्टयरूप हुए...** लो! जो अनन्त शक्तिरूप से था, वह व्यक्तरूप हुए। आहाहा! **तथा जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया...** अरिहन्त लेना है न? अरिहन्त लेना है न वापस। **जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया...** प्ररूपणा की। **तथा जो कर्म का अभाव है, वह वही केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप मोक्ष...** मोक्ष और मोक्ष का मार्ग—दो को याद करके नमस्कार करते हैं। आहाहा!

जो कर्म का अभाव है, वह वही केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप मोक्ष और जो शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय वही हुआ मोक्षमार्ग... आहाहा! इन दो को कहनेवाले यह। यह अरिहन्त ने कहा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? यह मोक्षमार्ग और मोक्ष। **और मोक्षमार्ग को भी प्रगट किया, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा! जिसने परमात्मतत्त्व की यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान और अनुभव करके अभेदरत्नत्रयी समभाव से वीतराग समाधि हुई और ऐसा जिनराज का उपदेश, उसे पाकर और अनन्त चतुष्टय परमात्मा का उपदेश ऐसा था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

पूर्णानन्द की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र जो रत्नत्रय, वह परमात्मा का उपदेश था। आहाहा! उसे पाकर अनन्त चतुष्टय हुए। आहाहा! अर्थात् वीतराग का उपदेश कैसा होता है, यह बात साथ में ली। आहाहा! जिसने परमात्मतत्त्व पूर्ण है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र अभेदरत्नत्रय उत्पन्न हुए—समाधि पूर्ण, ऐसा जिनका उपदेश है। आहाहा!

ऐसे उपदेश को प्राप्त करके जो स्वयं अनन्त चतुष्टय हुए। उस अभेदरत्नत्रय से हुए, ऐसा साथ में आया। आहाहा! उस व्यवहार को तो याद भी नहीं किया। वे कहें, नहीं। व्यवहारमार्ग है... व्यवहारमार्ग है। यहाँ कहते हैं, भगवान ने व्यवहार को मार्ग कहा ही नहीं। आहाहा! उन्होंने तो परमसमाधिरूप कहनेवाले... ऐसी वीतराग परमसमाधि के कहनेवाले भगवान। आहाहा!

देखो! ऐसा उपदेश वीतराग का होता है। जिनवाणी में यह होता है। चाहे कोई चाहे जो वाणी हो, परन्तु यह उनका वीतराग का उपदेश अन्दर है। आहाहा! कहा न उसमें? वीतरागता तात्पर्य कहा है। पंचास्तिकाय (गाथा) १७२। पूरे शास्त्र का तात्पर्य वीतराग... वीतराग... वीतराग है। ऐसा जिसने उपदेश किया है। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प समाधि के कहनेवाले। आहाहा! सूक्ष्म बाते हैं, भाई! यह परमात्मप्रकाश की शैली ही अलग प्रकार की है। आहाहा!

जिनराज ने उपदेश किया कैसा? कहते हैं। आहाहा! जिसे परमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव अभेदरत्नत्रय हुए, समभाव प्रगट हुआ और वीतराग और समाधि (प्रगट हुए), उसके कहनेवाले **जिनराज के उपदेश को पाकर अनन्त चतुष्टयरूप हुए,...** आहाहा! अरिहन्त की बात है, हों! यह। **जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया तथा जो कर्म का अभाव है वह वही केवलज्ञानादि...** अब यह मोक्ष का वर्णन है। मोक्ष भी उसे कहते हैं, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसा मोक्ष और मोक्ष का मार्ग भगवान ने कहा है।

और जो शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय वही हुआ मोक्षमार्ग... आहाहा! पहले वहाँ कहा था न? परमात्मतत्त्व। यह शुद्ध आत्मा। शुद्ध आत्मा नित्यानन्द प्रभु, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, आचरण, **वही हुआ मोक्षमार्ग, ऐसे मोक्ष और मोक्षमार्ग को भी प्रगट किया,...** अरिहन्त ने। अरिहन्त भगवान ने यह प्रगट किया। **उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा!

इस व्याख्यान में अरहन्तदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वही आराधने योग्य है,... अरिहन्त के केवलज्ञानादि हैं, वे आराधनेयोग्य हैं। ऐसा कहकर, इसका भावार्थ कहा है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)